

## अध्याय - 1

### इक्कीसवीं सदी की काव्य-संवेदना

---

मानव समाज में उपस्थित किसी भी प्रकार की अनुभूति, घटना, क्रिया, प्रतिक्रिया इत्यादि के प्रति खुद का लगाव एवं प्रभाव की स्थिति संवेदना है। 'संवेदना' दो शब्दों से मिलकर बना है- सम्+वेदना। 'सम्' उपसर्ग समान के अर्थ में प्रयुक्त होता है और 'वेदना' के लिए 'अनुभूति' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि समाज में अगर किसी के साथ कुछ घट रहा है उसकी वेदना के समतुल्य अगर अनुभूति का एहसास हम उसी रूप में या थोड़ा कम या अधिक रूप में महसूस करें तो यह महसूसना ही उस व्यक्ति, वस्तु, घटना या क्रिया के प्रति हमारी संवेदना कही जाएगी। वैसे संवेदना एक अमूर्त शब्द है, जिसकी कोई संपूर्ण परिभाषा संभव नहीं हो पायी।

#### 1.1 संवेदना से अभिप्राय :

काव्य-संवेदना को जानने से पहले हमें 'संवेदना' शब्द को समझना अति आवश्यक है। जब हम किसी व्यक्ति की वेदना को देखकर स्वयं भी उसी प्रकार से सुखी या दुखी हो जाते हैं तो उसे संवेदना कहते हैं। 'संवेदना' शब्द को परिभाषित करते हुए धीरेन्द्र वर्मा ने अपने 'हिंदी साहित्य कोश' में लिखा है, "संवेदना हमारे मन की चेतना की वह अवस्था है, जिससे हमें विश्व की वस्तु- विशेष का बोधन होकर उसके गुणों का बोध होता है।"<sup>1</sup>

डा०श्यामसुन्दर दास ने हिंदी शब्दसागर के दसवें भाग में 'सम्' उपसर्ग के कई अर्थ बताये हैं- "सम एक अवयव है, जिसका व्यवहार समानता, संगति, उत्कृष्टता, निरंतरता, औचित्य आदि सूचित करने के लिए होता है।"<sup>2</sup> वहीं व्यावहारिक हिंदी-अंग्रेजी शब्दकोश में

संवेदना का अर्थ अंग्रेजी के 'सेंसिटिविटी', 'सेन्सेशन', 'सेन्सिबल', 'फिल्लिंग' का समानार्थी है।<sup>3</sup>

संवेदना के अर्थ से ज्ञात होता है कि संवेदना मन में होने वाला अनुभव बोध है। यह अनुभव भिन्न-भिन्न हो सकता है। जीवन का व्यापक अनुभव ही संवेदना है जो हमारी रुचि का संश्लेषण करे। डा०रामस्वरूप चतुर्वेदी ने संवेदना को परिभाषित करते हुए अपने 'हिंदी साहित्य एवं संवेदना का विकास' नामक ग्रन्थ में लिखा है, "चित्तवृत्तियों के संश्लेषण को संवेदना कहते हैं।"<sup>4</sup>

परशुराम चतुर्वेदी संवेदना में बदलाव को समझने के लिए साहित्यिक युगों की परिकल्पना और उनके बीच के महत्त्वपूर्ण अन्तरालों को समझने की आवश्यकता मानते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए तो हमारे सामने संवेदना का एक व्यापक अर्थ उभरकर सामने आता है। भोलानाथ तिवारी के अनुसार, "संवेदना, समवेदना समानुभूति है।"<sup>5</sup>

'हिंदी साहित्य कोश' में संवेदना शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया गया है, "साधारणतः संवेदना शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है। मूलतः वेदना या संवेदना का अर्थ ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव है। अंग्रेजी में इसके लिए सिमपैथी, फीलिंग या फॉलोफिलिंग आदि अनेक शब्द प्रचलित हैं। मनोविज्ञान में इसका अर्थ ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव या सैन्सेशन के रूप में होता है।"<sup>6</sup>

आचार्य नंदकिशोर का मानना है कि संवेदना शब्द की व्यापकता बौद्धिक चेतना के साथ जुड़ने के बाद बढ़ जाती है। उनके अनुसार, "संस्कृत के 'विद्' धातु से व्युत्पन्न होने के कारण इसका अर्थ अंग्रेजी के सैन्सेशन तक ही सीमित नहीं, बल्कि नॉलेज या अंडरस्टैंडिंग भी इसके सीमा में आ जाते हैं। इस प्रकार बौद्धिक चेतना भी संवेदना' शब्द के अर्थ में समाहित है।"<sup>7</sup>

डा० हरदेव बाहरी ने अपनी हिंदी शब्दकोश में 'संवेदना शब्द के लिए 'अनुभूति और सहानुभूति' शब्द का प्रयोग किया है।<sup>8</sup> संवेदना संज्ञा शब्द है, जिसका सम्बन्ध अनुभूति और वेदना से है। 'सम्+विद्+ना' से उत्पन्न संवेद उस इन्द्रियबोध या ज्ञानात्मक क्षमता को कहते हैं, जिससे इस सम्पूर्ण जीव जगत, चर-अचर, भौतिक तथा आध्यात्मिक जगत के विभिन्न अवयवों का ज्ञान होता है। मनुष्य में पाँच प्रमुख संवेदी अंग हैं-आँख (देखना), नाक (सूँघना), त्वचा (स्पर्श करना), कान (सुनना) और जीभ (स्वाद लेना)। इन्हें इन्द्रियाँ भी कहते हैं। मानव मस्तिष्क को छठवाँ संवेदी अंग माना जाता है। इसके अलावा मनुष्य में एक खास अवयव है-संज्ञान। जिससे वह विभिन्न घटनाओं की संभावनाओं को जान और समझ लेता है।

संवेदना मनुष्य की संज्ञानात्मक क्षमता का महत्वपूर्ण हिस्सा होती है। वैज्ञानिकों का मानना है कि मानव मस्तिष्क एक जटिल संरचना है। इसी जटिल संरचना के कारण ही मनुष्य प्रकृति एवं जगत के अन्य प्राणियों से भिन्न तथा उसकी सीखने, समझने और याद करने की क्षमता भी अलग है। संज्ञानात्मक क्षमता में अवगम के कारण व्यक्ति को इन्द्रियबोध से ज्ञान तो प्राप्त हो जाता है, लेकिन उसका मस्तिष्क उसे ग्रहण नहीं कर पाता।

संवेदना (सेंसेशन) के लिए अंग्रेजी में feel, condolens, sympathy, compassion, impression, respons, reaction इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता है, लेकिन यह सेंसेशन को पूरी तरह से अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं। सेंसेशन एक जटिल प्रणाली है जिसके कई अर्थ और स्तर हैं :

- 1.व्यक्ति का किसी व्यक्ति या वस्तु के स्पर्श से उत्पन्न प्रतिक्रिया या अनुभूति।
- 2.व्यक्ति और वस्तु जब दूर हो तब की प्रतिक्रिया।
- 3.व्यक्ति और वस्तु या व्यक्ति जब आस-पास न हो, तब उसके प्रति भाव की अनुभूति।

#### 4. अलौकिक और मानव के बीच उत्पन्न भावानुभूति ।

अतः संवेदना का अर्थ है- अनुभूति, सहानुभूति, भावानुभव, इन्द्रियानुभावबोध या ज्ञान इत्यादि । इससे स्पष्ट है कि मनुष्य विभिन्न भावों, अनुभूतियों एवं संवेदनाओं का संचय है । इसी इमोशन के साथ-साथ मनुष्य की संवेदना में भी बदलाव देखा जाता है । समाज में घटित विभिन्न प्रसंगों से मनुष्य अनेक प्रकार की संवेदनाओं का अनुभव करता है । इसी की अभिव्यक्ति हमें साहित्य में भी देखने को मिलती है ।

#### 1.2 काव्य-संवेदना :

काव्य-संवेदना से तात्पर्य है-काव्य की संवेदना । कविता को पढ़कर होने वाली अनुभूति या भावबोध ही काव्य-संवेदना है । कवि समाज का सबसे संवेदनशील प्राणी होता है। वह सूक्ष्म एवं गहन भावों को बड़ी सूक्ष्मता से ग्रहण करता है । इसीलिए हम कह सकते हैं कि कवि जिस समाज, परिवेश, स्थान या वातावरण में विचरण या विहार करता है, वहाँ पशु-पक्षी, प्रकृति तथा विभिन्न भौतिक वस्तुओं एवं संसाधनों से टकराता फिरता है । वह अपने परिवेश को अत्यन्त गहराई के साथ महसूस करता है । इस सूक्ष्म इन्द्रियबोध के कारण इस संसार की विभिन्न वस्तुएँ, प्रकृति इत्यादि के साथ जो प्रतिक्रिया होती है, उसके फलस्वरूप मनुष्य (व्यक्ति) के मन में जो भाव उत्पन्न होता है, उसे ही संवेदना कहते हैं । जब इसी संवेदना को कवि अपनी लेखनी के माध्यम से काव्य में पिरोता है तो उसे ही काव्य-संवेदना कहते हैं । चूँकि विभिन्न कवि अलग-अलग परिवेश से आते हैं, उनका अनुभव अत्यन्त व्यापक और भिन्न होता है । इसीलिए उनकी काव्य-संवेदना भी भिन्न होती है । काव्य संवेदना को समय के परिप्रेक्ष्य में भी देखा जाना चाहिए । जिस कवि में जीवन की विभिन्न स्थितियों का विस्तार से वर्णन मिलता है और उसके भावों में गहराई होती है । वही उसे काव्य में ऊँचा स्थान दिलाती है । लॉजाइनस के

शब्दों में जहाँ यह उदात्त-तत्त्व हो सकता है वहीं अन्य वस्तु या अंतर्वस्तु भी लेखनीय संवेदना का ही अंग है।

साहित्य में काव्य-संवेदना से तात्पर्य कथ्य अथवा विषयवस्तु से है। काव्य-संवेदना कवि की चेतना या अनुभूति की वह दशा है जो उसे काव्य-रचने की प्रेरणा देता है और उसी के माध्यम से कवि काव्य-सृजन की ओर प्रवृत्त होता है। डा०देवी प्रसाद गुप्त साहित्यिक संवेदना को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, “संवेदना से अभिप्राय अभाव की स्थिति या वेदना की निवृत्ति से लेकर साहित्यकार की चेतना की उस मनोदशा से लेना चाहिए जो उसे सृजन की प्रेरणा, निर्माण की शक्ति, रचना-विधान की क्षमता और लोकजीवन के प्रति आस्थावान बनाता है।”<sup>9</sup>

डा० नगेन्द्र साहित्यिक संवेदना को मनोगत मानते हैं। उनके अनुसार “साहित्य में इसका प्रयोग स्नायविक-संवेदनाओं की अपेक्षा मनोगत संवेदनाओं के लिए ही अधिक होता है। इस प्रकार साहित्य में संवेदनशीलता की प्रतिक्रिया को ही शक्ति कहते हैं जिसके द्वारा संवेदनशील व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के दुख-सुख को समझकर उससे अपना तादात्म्य स्थापित करता है।”<sup>10</sup>

इस प्रकार काव्य-संवेदना कवि द्वारा अभिव्यक्त जीवन का वह व्यापक एवं विशेष अनुभव है, जो उसके सामाजिक सरोकार रूप में अभिव्यक्त होकर सामान्य जन को प्रेरित एवं संवेदित करता है तथा उनका संस्कार कर अपने कवि-दायित्व का निर्वहन करता है। काव्य को पढ़कर जो अनुभूति होती है, वह काव्यानुभूति है। संवेदना काव्य को कवि की काव्य-अनुभूति एवं प्रेरणा के साथ-साथ पाठक को भी दूर तक संवेदित करती है। यह समग्र रूप में हमारे सामने आती है जिसमें कवि का अपना समय, समाज, व्यक्ति एवं परिवेश के सभी अंग शामिल हैं। यही कवि को प्रेरित एवं संवेदित करते हैं। इसी की अभिव्यक्ति कविता में पायी जाती है, यही

काव्य-संवेदना है। कवि का अपने समाज, परिवेश, प्रेम इत्यादि के प्रति जो भाव कविता में घनीभूत रूप में अभिव्यक्ति पाते हैं, वही काव्य-संवेदना है।

अतः हम कह सकते हैं कि काव्य-मूल्य, जीवन-मूल्यों से ही निर्मित होते हैं। इसलिए कविता शुद्ध साहित्यिक रचना के साथ-साथ तत्कालीन समाज को भी अपने भीतर संजोये रखती है। इसीलिए कविता में अभिव्यक्त भाव और विचार कवि के निजी भाव या विचार न रहकर समग्र रूप में अभिव्यक्त होते हैं तथा अनुभूति और व्याख्या के स्तर पर कवि व पाठक पर इसका प्रभाव भिन्न-भिन्न हो सकता है। पाठक को होने वाली अनुभूति काव्यानुभूति है, और रचनाकार एवं पाठक दोनों को होने वाली काव्यानुभूति ही काव्य-संवेदना है।

### 1.3 इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता और उसकी काव्य-संवेदना

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता की शुरुआत सन् 2000 ई० के बाद से मानी जाती है, जो अनवरत रूप से विकासशील है। इसके आगाज के पीछे बीसवीं सदी के अन्तिम दशक को पृष्ठभूमि के रूप में देखा जा सकता है, जिसमें सन् 1991 ई० हुए नयी औद्योगिक नीतियां प्रमुख कारण थीं। वैश्विक रूप में जहाँ वैश्वीकरण की प्रक्रिया पहले ही शुरू हो गयी थी, वहीं भारत में इसका प्रभाव औद्योगिक नीतियों में हुए उदारवादी बदलाव के कारण देखा जा सकता है। इसने हमारे देश में वैश्विक बाजार को खुला निमंत्रण दिया। जिसमें अमेरिकी बहुराष्ट्रीय-कम्पनियों का प्रभाव, खुलकर सामने आया, जिसने पूरी दुनिया पर बाजारवाद के माध्यम से नव-उपनिवेश स्थापित करने का काम किया। इस नव-उपनिवेशवाद की राजनीति के माध्यम से अमेरिका ने विश्व की विभिन्न बड़ी-बड़ी संस्थाओं, जैसे विश्व मुद्राकोष, नाटो संगठन एवं अपने प्रशासन, विश्व की न्याय व्यवस्था, स्वास्थ्य व्यवस्था के माध्यम से वैश्विक स्तर पर अपना वर्चस्व स्थापित किया है। यह वर्चस्व विभिन्न देशों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। वह

अपना व्यापार या व्यवसाय बातचीत के माध्यम से शुरू करता है। यदि आप मान गये तो ठीक अन्यथा वह अपने कूटनीतिक या सैन्य ताकत के द्वारा वर्चस्व स्थापित कर लेता है। इराक पर नियंत्रण इसका प्रमुख उदाहरण है। अमेरिका ने इसके अलावा दो देशों के बीच आपसी मतभेद पैदा करके उनमें किसी एक की सैन्य सहायता और हथियारों की आपूर्ति के माध्यम से अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान की है।

भारत-पाक युद्ध और उत्तर कोरिया व दक्षिण कोरिया के मतभेदों को इस रूप में हम देख सकते हैं। वर्तमान समय में चीन और भारत की बढ़ती ताकत को देखकर अब भारत के समर्थन में उतरकर चीन की गतिविधियों पर जहाँ अप्रत्यक्ष रूप से निगरानी करने की कोशिश की है। वहीं दक्षिण चीन एवं हिन्द महासागर में बढ़ते चीन के दबदबे को रोकने की लगातार कोशिश जारी है।

सन् 1990 ई० में वैश्वीकरण ने पूरे विश्व को गहराई से प्रभावित किया। जिसके कारण 21वीं सदी का प्रारम्भ एक नये परिवर्तन के साथ हुआ। 21वीं सदी को 'सूचना क्रान्ति का दौर' कहा गया है, जिसमें अनेक वैज्ञानिक खोजों के माध्यम से जहाँ मानव ने अनेक प्रकार के स्वचालित मानव रहित रोबोटो को तैयार किया है, वहीं जीवन की तलाश में मंगलयान का अभियान भी तेज कर दिया है। 21वीं सदी में वैश्विक स्तर पर एक अलग और नई प्रकार की होड़ शुरू हुई है। सूचना और प्रौद्योगिकी को लेकर अब तो यह तकनीकी कहावत बन गयी है कि 'इनफार्मेशन इज वेल्थ (information is wealth)।' उसी सूचना प्रौद्योगिकी के तेजी से विकास ने जहाँ इंटरनेट के माध्यम से फेसबुक, व्हाट्सएप ट्वीटर, यूट्यूब, हाईक, मैसेंजर इत्यादि की वर्चुअल दुनिया में एक नए जीवन की शुरुआत की है, जिससे जीवन में और तेजी तथा व्यस्तता आ गयी है। इन नए-नए वैज्ञानिक खोजों एवं आविष्कारों ने एक ओर जहाँ मानव-जीवन को सुविधाओं से लैस किया है, वहीं दूसरी ओर मानव-समाज के लिए घातक भी

सिद्ध हुआ है, जिससे साइबर क्राइम तेजी से बढ़ता जा रहा है। इससे रुपये-पैसों के साथ-साथ सूचना और तकनीकी की चोरी ने संवेदनशील हथियारों की पहुँच आसान होती जा रही है और उससे वैश्विक स्तर पर परमाणु खतरों के आतंक को देख सकते हैं।

21वीं सदी के प्रारम्भ में गाँवों का तेजी से हो रहे शहरीकरण और गाँव से शहरों की ओर पलायन इन दोनों ने मानव समाज के सामने चुनौती पेश की है। यह बदलाव इतना तेजी से हो रहा है कि मनुष्य को अपनी स्मृति तक पर भी भरोसा नहीं। अरुण कमल इस सदी में हो रहे बदलाव को रेखांकित करते हैं कि इस 'नये इलाके में' प्रवेश इक्कीसवीं सदी में प्रवेश है। वह लिखते हैं :

“इस नए बसते इलाको में  
जहाँ रोज बस रहे हैं नए-नए मकान  
मैं अक्सर रास्ता भूल जाता हूँ/धोखा दे जाते हैं पुराने निशान  
यहाँ रोज कुछ बन रहा है/रोज कुछ घट रहा है  
यहाँ स्मृति का भरोसा नहीं  
एक ही दिन में / पुरानी पड़ जाती है दुनिया  
जैसे बसन्त का गया पतझड़ को लौटा हूँ  
जैसे बैसाख का गया भादों को लौटा हूँ”<sup>11</sup>

21वीं सदी में हो रहे तेजी से बदलाव के कारण अपनी पुरानी संस्कृति और परम्परा को पहचानना दुष्कर हो गया। इसी को रेखांकित करते हुए जगदीश नारायण श्रीवास्तव लिखते हैं, “मैं समझता हूँ इक्कीसवीं सदी में हम जिस नई पीढ़ी को हिंदी कविता के वैभव विस्तार में उभरती हुई देख रहे हैं ये हमारे पूर्वकालिक काव्य-पिताओं की संततियाँ नहीं हैं। बल्कि नये समय की आज की हिंदी दुनिया की नई मानवीय अनुभूतियों की स्वयंभू सर्जिका है। दरअसल मानव समाज की



प्रकृति, उसके जीवन यथार्थ और समूची परिस्थितिकी में कभी-कभी इतने बड़े परिवर्तन हो जाते हैं कि समय विकसित नहीं होता, बल्कि कटकर पृथक हो जाता है। इसीलिए बहुतों को ऐसे समय में 'इतिहास के अंत' का भ्रम होने लगता है।''<sup>12</sup>

नीलेश रघुवंशी अपनी कविता के माध्यम से 20वीं सदी पर अफ़सोस जाहिर करती हुए उसकी उदासी और अंधकार में खो गयी हैं, वे नयी सदी में नये सपनों एवं आकांक्षाओं के साथ जीना चाहती हैं। इसे वे अत्यन्त सहजता एवं गहराई से दर्ज करती हैं :

“क्या भरोसा  
इक्कीसवीं सदी में पहाड़ों पर दर्ज हो प्रेम  
जो नहीं खोज सके हम बीसवीं सदी में  
बेचैनी से भरी है बीसवीं सदी/ हाहाकार मचा है उसके भीतर  
पूरी पृथ्वी में किसी के पास/नहीं बचा इतना धीरज  
कि हँस कर विदा करें उसे।”<sup>13</sup>

नीलेश रघुवंशी नई सदी की शुरूआत को एक ओर जहाँ 'आंतक और दहशतगर्दी' के रूप में देखती हैं, वहीं दूसरी ओर इसके सुनहरे भविष्य की कल्पना करती हैं :

“आंतक और बर्बरता से शुरू हुई नई सदी  
धार्मिक उन्माद और बर्बर हमले बने पहचान इक्कीसवीं सदी के  
बदा था इक्कीसवीं सदी की किस्मत में  
मरते जाना हर दिन बेगुनाह लोगों का  
हजार बरसों पीछे ढकेलने का षडयंत्र आखिर किया किसने?  
किसने? किसने ढकेला जीवन के बुनियादी हकों को हाशिए पर ?  
क्या सचमुच

इक्कीसवीं सदी उन्माद और युद्धोन्माद की सदी होगी या  
होगी उजड़ते संसार में एक हरी पत्ती की तरह?’’<sup>14</sup>

इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य समकालीन साहित्य का ही विकसित रूप है। इसलिए समकालीन कविता के दौर में जो समसामयिक सवालों एवं मुद्दों तथा वैश्वीकरण, बाजारवाद एवं पूँजीवाद के कारण जो विरोध, प्रतिरोध और विद्रोह की आशंकायें एवं अपेक्षायें थीं, उसका आज विकराल रूप हमारे समक्ष मूर्तिमान है। आज के कवि अर्थात् इक्कीसवीं सदी के कवियों को हम दो रूपों में देख सकते हैं। एक वे जिनके लेखन के केंद्र में सामाजिक, राजनैतिक एवं जन सरोकार है तथा दूसरे वह जिन्होंने पुरस्कार और अकादमिक पहुँच हेतु साहित्य का सृजन किया है एवं अपनी किसी खास विचारधारा के प्रचार-प्रसार में जुटे हैं। गणेश पाण्डेय अपनी पुस्तक नई सदी की कविता में लिखते हैं, “एक पाँच टका पाने वाले और हमेशा जन की बात करने वाले अभिजन कवियों की और दूसरी ओर कविता में जन का जीवन जीने वाले सचमुच के जनकवि की। अर्थात् जनवादी कवि एवं जनविरोधी कवियों की।”<sup>15</sup>

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में चित्रित पारिवारिक रिश्तों का प्रभाव एवं आत्मीयता को बड़े ही सरल एवं सहज रूप में प्रस्तुत करती है। इसमें सपाट-बयानी और भाषिक-रुग्णता को त्यागकर सरल एवं संप्रेषणीयता के संकट को दूर कर सहज भाषा में प्रस्तुत करती है। वह प्रकृति-सौन्दर्य के अद्वितीय बिम्बों की निर्मिति के साथ-साथ मानवीय सम्बन्धों को परस्पर प्रेम एवं सद्भाव के ताने-बाने में बुनने की कोशिश करती है। वहीं दूसरी ओर एक ऐसी दुनिया का निर्माण करती है जहाँ आशा और विश्वास हो। वह अपने समकालीन संवादहीनता के कारण आज एक घर में साथ-साथ होने के बावजूद भी हम मानसिक स्तर पर कोसों दूरी का अनुभव करते हैं। 21वीं सदी में सूचना क्रांति ने जहाँ लोगों में एक ओर जागरूकता पैदा की है। वहीं इसने वाट्सऐप, फेसबुक, ट्वीटर के माध्यम से ऐसी दुनिया का

निर्माण किया है, जहाँ अभिव्यक्ति की खुली छूट है। इस वर्चुअल दुनिया ने पारिवारिक सम्बन्धों में बढ़ते संवादहीनता की स्थिति ने उनके आत्मीय सम्बन्धों को खोखला किया है तथा लोगों में नयी-नयी महत्वाकांक्षा पैदा की है। जिससे नवयुवा वर्ग में कौन बनेगा करोड़पति जैसे शो के माध्यम से धन कमाने की इच्छा प्रबल होती जा रहा है। वह इस महत्वाकांक्षा को बिना मेहनत के ही पाना चाहते हैं। वह अमेरिका की तर्ज पर इस ब्रांड-की संस्कृति की ओर आगे बढ़ना चाहते हैं, जो उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा देती है और हमें अपसंस्कृति की ओर ले जाती है।

सुशांत सुप्रिय अपने काव्य संग्रह में वर्तमान स्थिति को सटीक शब्दों में बयां करते हुए बताते हैं कि 21वीं सदी की सूचना क्रांति ने तकनीकी और प्रौद्योगिकी के माध्यम से जीवन को इतना तर-ब-तर कर दिया है कि वह इस व्यवस्था से परेशान एवं व्यथित है। वर्तमान समय में भी लगभग आधी आबादी अभी अशिक्षित है। इस स्थिति में तकनीकी कौशल होने के कारण अपने को समाज में फिट नहीं पाता। इसीलिए वह वर्तमान की समस्याओं का हवाला देते हुए इस युग के व्यक्ति को इंगित करते हुए लिखते हैं :

“न कोई खिड़की, न दरवाजा, न रोशनदान है  
काल-कोठरी-सा भयावह वर्तमान है।  
हमें बचाओं, हम हैं/डरे हुए लोग छटपटा रहे हैं  
किंतु दूसरी ओर केवल/एक रेकार्डेड आवाज उपलब्ध है-  
इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं”<sup>16</sup>

इक्कीसवीं सदी की कविता इस सम्बन्ध में आगे निकली हुई प्रतीत होती है जहाँ समकालीन कविता केवल अस्तित्व के संकट को रेखांकित करती थी, वहीं इक्कीसवीं सदी की कविता इसके समाधान के साथ-साथ तीखे स्वर के साथ अपने अधिकारों की मांग करती हैं।

स्त्री को केन्द्र में रखकर उनके अधिकारों की प्राप्ति हेतु समकालीन साहित्य में एक विमर्श की शुरुआत हुई जिसे स्त्री-विमर्श, स्त्रीवाद, नारीवाद इत्यादि नाम दिया गया। इसमें अत्यन्त समानता होते हुए भी सूक्ष्म अन्तर है। स्त्री-विमर्श की आधार भूमि भारतीय पृष्ठभूमि न होकर पाश्चात्य भूमि है। सीमोन द् बोउआ का कथन है, “स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बना दी जाती है।”<sup>17</sup>

इसके अन्तर्गत स्त्री-वादी रचनाकारों ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था की तीखी भर्त्सना करते हुए उसकी विसंगतियों को उजागर करती हैं तथा अपने अधिकारों की माँग करती हैं। 21वीं सदी की हिंदी कविता में स्त्री-विमर्श सम्बन्धी कविताओं का विस्तृत रूप देखा जा सकता है। जिसमें सविता सिंह, कात्यायनी, हेमंत-कुकरेती, क्षमा शर्मा, अनामिका, नीलेश रघुवंशी आदि प्रमुख हैं। 21-वीं सदी की कविता की विशेषता है कि इसमें महिलाओं का हस्तक्षेप बढ़ा है। संवेदनशीलता के साथ-साथ वह अपने को विचारवान प्राणी के रूप में स्थापित करती हैं। अस्मितावादी विमर्शों में आधे दुनिया का यह प्रश्न अपने पूरेपन के साथ उपस्थित है। कविता के संसार में स्त्री अपने स्त्रीत्व के साथ पुरुष समाज से बराबरी समान एवं भागीदारी की माँग करती हैं :

“साथी का दम भरने वाले स्वामी

तुमने उसे पहचान?

क्यों कहते हो नारी को

मानव समाज का गहना।”<sup>18</sup>

21वीं सदी की स्त्री आज भारत की नहीं अपितु विश्वपटल पर बड़े-बड़े पदों पर कार्यरत हैं। इसीलिए अब स्त्री-समाज के साथ-साथ आज की कवयित्री पुरुष समाज से ‘हाफ द् अर्थ एण्ड हाफ द् काई’ की माँग नहीं करती, अपितु वह अन्नत आकाश चाहती है :

“विद्रोहिणी बन चीखती हूँ  
मुझे असीम दिंगत चाहिए  
छत का अनंत खुला आसमान नहीं  
आसमान की खुली छत चाहिए  
मुझे अनंत आसमान चाहिए”<sup>19</sup>

21वीं सदी की स्त्री-वादी रचनाकारों ने अपने पूर्वजों के भोगे हुए दुख, दर्द, पीड़ाओं पर अब वे रोना नहीं रोते, बल्कि तटस्थता के साथ अपने प्रश्नों को रखती हैं। इसीलिए 21वीं सदी का काव्य-साहित्य प्रश्नानकुलता से भरा हुआ है। निर्मला पुतुल ‘क्या तुम जानते हो’ में पुरुष समुदाय से प्रश्न करती हैं :

“क्या तुम जानते हो/पुरुष से भिन्न/एक स्त्री का एकांत?  
घर प्रेम और जाति से अलग /एवं स्त्री को उसकी अपनी जमीन  
के बारे में बता सकते हो तुम ?/...../  
तन के भूगोल से परे/एक स्त्री के मन की।”<sup>20</sup>

अतः हम देख सकते हैं कि इक्कीसवीं सदी की स्त्री रचनाकारों ने अपने अधिकारों को बहुत ही सटीक रूप में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सामने रखती हैं। इस कविता में वह तेवर भी है जो सच को सच के रूप में कह सके। साथ ही विचारधारात्मकता की धार में और पैनापन भी मौजूद है जो मुक्ति के लिए आवश्यक है।

अस्मिताई संकट सम्बन्धी विमर्श में दलित विमर्श आज एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। जाति को लेकर हो रहे विमर्श भारतीय समाज की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। जिसमें एक जाति दूसरी जाति को अपने से कमतर मानती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, ‘भारत में हर जाति अपने से छोटी जाति ढूँढ लेती है।’ दलित शब्द को परिभाषित करते हुए कँवल भारती लिखती

हैं, “दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है ।....जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया है ।”<sup>21</sup>

दलित साहित्य की वैचारिक का आधार है डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर का जीवन संघर्ष। महात्मा बुद्ध का दर्शन उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि है। दलित विमर्श के माध्यम से दलित कवियों ने अपने प्रश्नों को बड़ी ही प्रखरता से उठाया है। उसकी अभिव्यक्ति इनकी इन कविताओं में देख सकते हैं। सदी के आखरी दशकों में राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से समाज अस्मिताओं की जो लड़ाई छिड़ी थी। वह आज 21वीं सदी में आकर और भी तेज हो गयी है। अब वे केवल जीने की न्यूनतम शर्त की माँग नहीं करते, बल्कि गरिमा के साथ जीवन जीने को देखते हैं। वह इन अस्मिता के आन्दोलन से भारतीयता की अवधारणा स्वस्थ समाज का निर्माण करती दिखाई देती है।

दलित कविता का मुख्य स्वर विद्रोह और नकार का है। जो व्यवस्था उसे दलित कहने के लिए विवश करती है। लेखक उसके लिए विद्रोह करता है और कथित मानदण्डों को तर्क के आधार पर नकारता है। दलित कवि इस स्थिति में बदलाव चाहता है। डॉ॰ जय प्रकाश कर्दम 21वीं सदी की दलित कविता के स्वरूप को बखूबी पेश करते हैं :

“कविता नहीं है जिन्दगी/कि उसमें  
प्रणय और सौन्दर्य की/रसधर ढूँढी नहीं  
रंगमंच नहीं है जिंदगी/कि उस पर  
कल्पनाओं का संसार सजाया जाए  
विषमताओं के जंगल में  
तिनका-तिनका सुलगती/आग है।”<sup>22</sup>

दलित कवि दलितों की दशा को रेखांकित करते हैं :

‘आइये महसूस कीजिए जिंदगी के ताप को

मैं चमारों की गली तक ले चलूँगा आप को’

अस्मिताई विमर्श की कड़ी में आदिवासी विमर्श महत्वपूर्ण कड़ी है। इसमें आदिवासी जन-जातियों पर मंडराते अस्तित्व के खतरों को देखा जा सकता है। ठीक वैसे ही जल, जंगल, जमीन के ऊपर भी खतरा मंडरा रहा है। औद्योगिकरण एवं विकास की नीति ने इन संवेदनशील इलाकों को भारी क्षति पहुँचाई है। जनजाति समाज के साथ वहाँ के पेड़-पौधे, जल, जंगल जमीन को नष्ट-भ्रष्ट किया है। निर्मला पुतुल व अन्य आदिवासी कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से उनकी स्थिति को बया किया है। वह कविता में लिखती हैं :

‘वे नहीं जानते कि

कैसे पहुँच जाती हैं उनकी चीजें दिल्ली

जबकि राजमार्ग तक पहुँचने से पहले ही

दम तोड़ देतीं है। उनकी दुनिया की पगड़ड़ियाँ

नहीं जानतीं कि कैसे सूख जाती हैं

उनकी दुनिया तक आते-आते नदियाँ

तस्वीरें कैसे पहुँच जातीं है उनकी महानगर

नहीं जानतीं वे / नहीं जानतीं ।’<sup>23</sup>

इस कविता के माध्यम से संस्कृति और सभ्यता के बदल रहे ढाँचे और शोषण के बारीक होती चाल को आदिवासी स्त्रियाँ समझती हैं। पूँजीवादी संस्कृति और अंधाधुन विकास की मार ने आदिवासी जन जीवन को छत-विछत किया है। निर्मला पुतुल ने इसे अपनी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। वह समकालीन आततायी, दहशत गर्दी व आतंक से परिवेश के बावजूद भी हिंदी कविता प्रतिदिन और अधिक लोकतांत्रिक होती जा रही है। यथार्थ की

इसी विषमता बोध के बीच से भविष्य के प्रति आशावान दृष्टि इस सदी के काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

आज का बाजार देशी बाजार न होकर वैश्विक बाजार में बहुत तेजी से तब्दील हो रहा है। बाजार हमेशा से ही मानव समाज एवं सभ्यता की भौतिक और सामाजिक जरूरत रहा है, और रहेगा। लेकिन इस नई सदी में बाजार का स्वरूप इतनी तेजी से बदला है कि इसमें भौतिक एवं सामाजिक जरूरतें लोभ, लालच व मुनाफाखोरी की संस्कृति में तब्दील हो रही है। प्रारम्भिक मानव सभ्यता में वस्तु-विनिमय की प्रणाली थी, वह 20वीं सदी के अंतिम दशक तक चलती रही। इसमें बाजार का मुख्य उद्देश्य मनुष्य की भौतिक एवं सामाजिक जरूरतों को पूरा करना था। मानव सभ्यता प्रारम्भ से ही बुद्धि एवं विवेक के प्रयोग से सुविधा की तलाश करता रहा है, जिसमें कई नयी-नयी वस्तुओं की खोज हुई। इसी प्रकार मनुष्य अपनी सुविधा को ध्यान में रखते हुए, नयी-नयी वस्तुओं की खोज करता रहा है। 21वीं सदी में नयी-नयी आविष्कृत वस्तुओं के द्वारा मानव को सुविधा प्रदान करें तथा उससे अधिक से अधिक पूँजी कमाना इस बाजारवाद का प्रमुख उद्देश्य है। आज के बाजारवाद के पीछे देशी नहीं, अपितु विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों एवं पूँजीपतियों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हाथ है। आज के समय में अमेरिकी वर्चस्व का बोलबाला है जिससे अपनी ताकत का दुरुपयोग करके तीसरी दुनिया के देशों में अपने बाजार का प्रभाव स्थापित कर अधिक से अधिक धन कमाना इनका उद्देश्य है। एकान्त श्रीवास्तव अपनी आलोचना कृति 'बढ़ाई कुम्हार और कवि' में इस बाजारवाद के स्वरूप को प्रकट करते हैं। वह लिखते हैं "भूमण्डलीकरण, विश्व-गाँव की संस्कृति, साम्राज्यवाद, नव्य-उपनिवेशवाद और बाजारवाद एक ही चेहरे के कई मुखौटे हैं। और यह चेहरा पश्चिम का है-अमेरिका जो पूरे विश्व को गाँव में बदलकर अपने बाजार में बदल देना चाहता है। जहाँ केवल उसके नियम चलेंगे और उसी की सत्ता होगी। इसीलिए बाजार



भूमंडलीकरण के बहाने नव्य-उपनिवेशवाद का मारक प्रक्षेपास्त्र है। इस तरह बाजारवाद तीसरी दुनिया के विकासशील देशों की पूँजी और बाजार की बागडोर से शासित करने की एक अवधारणा है जिसे विभिन्न देशों की सरकारों पर दबाव बनाकर उन्हें डरा-धमका कर, साँठगाँठ और मिली से भारत ही नहीं, अपितु अनेक देशों के दरवाजे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए कभी के खुलवाए जा चुके हैं। भारत जैसे देश में जहाँ की प्रधान समस्या आज भी भूख, गरीबी और बेरोजगारी है-वहाँ आवश्यकत वस्तुओं से ध्यान हटाकर अनावश्यक वस्तुओं को जरूरत का हिस्सा बनाया जा रहा है।”<sup>24</sup>

यदि भारत की बात करें तो यहाँ एक ओर जहाँ गरीब, श्रमिक औरत या व्यक्ति बेजोड़ मेहनत से दो जून की रोटी कमाता है और भिखमंगे पेट भरने के लिए भिक्षा माँगते हैं, वहीं पढ़ा-लिखा बेरोजगार भी अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ है। इसीलिए इन दशाओं का चित्रण करते हुए निराला लिखते हैं कि एक ओर भूख मिटाने के लिए मजदूर स्त्री बेजोड़ मेहनत के द्वारा ऊँची-ऊँची इमारतें बनाने के लिए विवश है, लेकिन दूसरी ओर उसके रहने तक के लिए ठिकाना नहीं है, यह कैसी विडम्बना है :

“वह तोड़ती पत्थर।

देखा उस मैंने इलाहाबाद के पथ पर

वह तोड़ती पत्थर।”<sup>25</sup>

निराला ‘भिक्षुक’ कविता के माध्यम से भारत में गरीबी का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि यह कैसी विडम्बना है कि गरीब व्यक्ति उन कुत्तों से पत्तल छीन कर भूख मिटाने को विवश है, मानवीय मूल्यों का छरण है। इसीलिए निराला लिखते हैं :

“वह आता

दो टुक कलेजे को करता, पछताता

पथ पर आता ।  
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,  
चल रहा लकृतिया टेक  
मुट्टी भर दाने को-भूख मिटाने को  
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाटा-  
दो टूक कलेजे के करता पछताती-  
चाट रहे जूठी पत्तल वे सभी सड़क पर खड़े हुए  
और झपट लेने को उनसे कुन्ते भी हैं अड़े हुए”<sup>26</sup>

इसी प्रकार दुष्यन्त कुमार गरीबी का चित्रण करते हुए इस देश की दयनीय दशा का चित्रण इस तरह करते हैं :

“न हो कमीज हो पैरों से पेट, ढक लेंगे  
वे लोग कितने मुनसिब हैं इस सफर के लिए।”<sup>27</sup>

लेकिन इक्कीसवीं सदी में गरीबी और भीख मांगने की प्रथा में भी बाजारवादी सोच ने घुसपैठ की है।

सुरेश सेन निशांत ‘कोक पीती हुई भिखारिन लड़की’ के माध्यम से बताते हैं कि किस प्रकार इस बाजारवाद ने मनुष्य की मानसिकता को गुलाम बना दिया है, जिसकी इच्छा भूख से पहले कोक पीने पर जाती है। वह खाने की वस्तुओं को छोड़ कर उस कोक को चुनती है जो कई हानिकारक पदार्थों से मिलकर बनता है। वह लिखते हैं :

“बहुत इच्छा थी उसकी कोक पीने की  
एक सपना था उसका  
कि वह भी पियेगी कोक/एक दिन।

मुस्कुरा रही है/ढेर सारे गर्व से  
विज्ञापनों पर गिरती धूप/उसे कोक पीता देखा  
मुस्कुरा रहे हैं/ नायक-नायिकाओं के  
मासूमियत ओढ़े क्रुर चेहरे ।  
इस तपती धूप में भी/हरी हुई जा रही है  
बाजार की तबीयत ।’’<sup>28</sup>

आज बाजार की पहुँच हमारे शयन-कक्ष तक हो गयी है जिसमें हमारे भोजन, सौन्दर्य इत्यादि के करणीय एवं अकारणीय कामों भी निर्धारित करने लगा है । जिसमें टी.वी. चैनलों, समाचार पत्रों, विज्ञापनों, मीडिया इत्यादि ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अब ऐसा लगता है कि समाज में न रहकर विश्व बाजार में रहते हैं। आज बाजार का अर्थ बदल गया है। यदि आपके पास पूँजी नहीं है तो आप के लिए इस बाजारवादी समाज में कोई जगह नहीं है । कोक, पॉप इत्यादि की अमेरिकी अपसंस्कृति भी तेजी से फैला रही है। इसके प्रति भारतीय नव युवा का रुझान आज का सबसे बड़ा चिंतन का विषय है ।

बाजारवाद ने जिस अर्थतंत्र को विकसित किया है वह बिचौलियों और दलालों का अर्थतंत्र है। कृषक और मंडी के बीच दलाल खड़े हैं-जिनका कोई उत्पादन नहीं, वे सच्चे श्रमशील और कर्मठ उत्पादकों पर प्रभावी हैं । बद्रीनारायण अपनी एक कविता ‘बाजार का गीत’ में इन श्रमशील एवं कर्मठ लोगों की पीड़ा को स्वर देते हैं । वह लिखते हैं :

“जो कोई बाजार में आएगा  
चार पैसे में बिकाएगा  
पर दो ही पैसा पायेगा  
दो तो दलाल ले जायेगा ।’’<sup>29</sup>

देश और किसानों की इसी दुर्दशा पर नीलेश रघुवंशी-‘किसान’ की मार्मिक पीड़ा को अभिव्यक्ति देती हैं :

“और बाजार में उलट जाती है उसकी पूरी जेब  
लुटा-पिटा अगली फसल की आस में  
गाँव को लौटता  
ये हमारे समय का किसान है  
न कि किसान का समय है यह ।”<sup>30</sup>

21वीं सदी की हिंदी कविता में वस्तु और कविता दोनों की गुणवत्ता दोगुनी दर्जे की होकर रह गई है। यह ब्रांड संस्कृति का दौर है। बिकना ही प्रतिमान है। पैकिंग और लेबल आकर्षक होने चाहिए, माल चाहे क्यों न ‘फोर्थ क्वालिटी’ का हो। इस सम्बन्ध में लीलाधर जगूड़ी लिखते हैं :

“यह इलाका उत्पादकों का नहीं,  
सबसे बड़े उपभोक्ताओं का है  
चाहे जितनी दूर पैदा होती हो चीजें पर  
बिकना ही बिकती इसी इलाके में हैं पैदावार का बेहतर नतीजा है ।”<sup>31</sup>

इस सम्बन्ध में विष्णु नागर की कविता ‘अमेरिकीकरण’ भारतीयों की पराधीन मानसिकता का आलोचनात्मक विश्लेषण करती है। इसमें कवि ने व्यंग्य के माध्यम से अमेरिकी मानसिकता से भारत किसप्रकार प्रभावित हो रहा है इसको ही पकड़ने की कोशिश की है तथा उसके पीछलगूओं की मनोवृत्त को उजागर करती है। वह लिखते हैं :

“मैं अमेरिकी नजर ने पूरी दुनिया को देखता हूँ  
यहाँ तक की खुद अपने मुल्क को भी

मुझे अमेरिकी हित, अन्तर्राष्ट्रीय लगते हैं  
मुझे वे सब दयनीय, समय से पिछड़ गए बीते लगते हैं  
जो अमेरिका के साथ नहीं हैं  
और ग्लोबलाइजेशन का विरोध करते हैं।”<sup>32</sup>

बाजार धीरे-धीरे मनुष्य की मानसिकता को कैसे गुलाम बनाता है, वह विभिन्न वस्तुओं जैसे सौन्दर्य प्रसाधन, खानपान नशा, पेय इत्यादि के माध्यम से सबसे पहले वह इंसान का पसंदीदा बनता है और यही धीरे-धीरे बाद में आदत के रूप में तब्दील हो जाता है। प्रारम्भ में विक्रेता इन वस्तुओं को कम से कम दाम में देने का वादा करते हैं। लेकिन जैसे-जैसे इंसान इसका आदि होता जाता है तब वह उसकी कीमतों में मनमाने ढंग की वृद्धि करते हैं और उसे बाजार में उच्चतर दर में बेचकर अधिक मुनाफा कमाते हैं। राजेश जोशी अपनी कविता ‘अतिरिक्त चीजों की माया’ के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। वह लिखते हैं :

“बाजार में लेने जाता हूँ कोई जरूरत की चीज,  
तो साथ थमा दी जाती है एक और चीज मुफ्त,  
उस चीज की कोई जरूरत नहीं मुझे,  
पर लेने से इंकार नहीं कर पाता उसे  
और बस इसी एक पल में पकड़ लिया जाता हूँ।  
उस अतिरिक्त के लिए जरूरत की चीजों के बीच  
थोड़ी जगह बनाता हूँ,  
तो जरूरत चीजों की जगह थोड़ी सिकुड़ जाती है  
अतिरिक्त हमारे मन की कमजोरी को पहचानता है  
लालच धीरे-धीरे पाँव पसारता है

एक अतिरिक्त दूसरे अतिरिक्त को बुलाता है  
और दूसरा अतिरिक्त तीसरे अतिरिक्त के लिए  
जगह बनाता है

एक दिन सारी जगह/अतिरिक्तों से भर जाती है।<sup>33</sup>

इस प्रकार हम इक्कीसवीं सदी की कविता में पहचान का गहराता संकट, वैश्वीकरण पूंजीवाद, औद्योगिकीकरण के कारण बाजारवाद का प्रभाव, पारिवारिक सम्बन्ध, अपने समय के ज्वलंत प्रश्नों से क्रिया प्रतिक्रिया, लोकजीवन का चित्रण, प्रेम का बदलता स्वरूप, जटिल यथार्थ की बहुआयामिता को पकड़ने की कोशिश, लोकतंत्र के प्रति गहन आस्था एवं विश्वास आदि से संबंधित सवेदनाएं मौजूद पाते हैं।

## संदर्भ :

1. वर्मा, डॉ० धीरेन्द्र (सं.); हिंदी साहित्य कोश (भाग-एक); ज्ञानमंडल प्रकाशन वाराणसी-617320; संस्करण : 1963; पृ. 863.
2. दास, डॉ० श्याम सुंदर (सं.); हिंदी शब्द सागर (भाग-10); नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी (उ.प्र.); संस्करण : 1973; पृ. 839.
3. तिवारी, भोलानाथ और महेंद्र; व्यावहारिक हिंदी-अंग्रेजी शब्दकोश; विश्वविद्यालय प्रकाशन पुलिस स्टेशन विश्वालक्ष्मी एडाजेस्ट चौक, वाराणसी : 221001; संस्करण : 2000; पृ. 646.
4. चतुर्वेदी, डॉ० रामस्वरूप; हिंदी साहित्य एवं संवेदना का विकास; लोकभारती प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2009; पृ.10.
5. तिवारी, भोलानाथ; हिंदी पर्यायवाची कोश; प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, छात्तालाल मियां, चांदनी महल, पुराणी दिल्ली -110002; संस्करण : 1998; पृ. 626.
6. वर्मा, डॉ० धीरेन्द्र (सं.); हिंदी साहित्य कोश (भाग-एक); ज्ञानमंडल प्रकाशन वाराणसी-617320; संस्करण : 1963; पृ. 863.
7. आचार्य नंदकिशोर; अज्ञेय की काव्य तितीर्षा; वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, राजस्थान; संस्करण : 2003; पृ.17.
8. बाहरी, हरदेव (डॉ०); हिंदी शब्दकोश; राजपाल एन्ड संस प्रकाशन, 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, नई-दिल्ली-110006; संस्करण-2019; पृ. 760.
9. गुप्त, डॉ० देवीप्रसाद; साहित्य, सिद्धांत और समालोचना; ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी; संस्करण : 1991; पृ. 22.
10. डॉ० नगेन्द्र (सं.); मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्यकोश); राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 1968; पृ. 232.
11. अनिमेष, प्रेमरंजन (संपा०); प्रतिनिधि कविताएं : अरुण कमल; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण : 2013; पृ. 48-49.
12. श्रीवास्तव, जगदीश नारायण; इक्कीसवीं सदी : कविता और समाज; अमरसत्य प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण: 2016; पृ.1.
13. वही; पृ. 316.
14. रघुवंशी, नीलेश; कवि ने कहा; किताबघर प्रकाशन, 4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण: 2016; पृ. 53-54.
15. पाण्डेय, गणेश; नयी सदी की कविता; वाणी प्रकाशन, दिल्ली -110002; संस्करण: 2016; पृ.11-12.
16. सुप्रिय, सुशांत; इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं; अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005(उ०प्र०); संस्करण: 2015; पृ. 14.

17. वर्मा, डॉ० रेणु; साहित्यिक निबंध; राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर; संस्करण: 2006; पृ. 415
18. मिश्रा, कुमार गौरव (सं०); जनकृति पत्रिका (21वीं सदी का विशेषांक); जून, 2018; पृ. 94.
19. वही।
20. वही।
21. डॉ० अमरकांत; हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली; वाणी प्रकाशन, दिल्ली-110002; संस्करण: 2016; पृ.17.
22. मिश्रा, कुमार गौरव (सं०); जनकृति पत्रिका (21वीं सदी का विशेषांक); जून, 2018; पृ. : 93.
23. वही, पृ. 95.
24. श्रीवास्तव, एकांत; बढई, कुम्हार और कवि; किताबघर प्रकाशन, 4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण: 2003; पृ. 268.
25. शर्मा, डॉ० रामविलास; राग-विराग (सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ); लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण: 2014; पृ. 118.
26. निराला; कविता कोश-भिक्षुक कविता।
27. कुमार, दुष्यंत; साये में धूप; राजकमल प्रकाशन ,दिल्ली; संस्करण: 2013; पृ. 26.
28. निशांत, सुरेश सेन; कुछ थे जो कवि थे; अंतिका प्रकाशन, सी -56/यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन -2 गाज़ियाबाद -201005 (उ०प्र०); संस्करण: 2015; पृ. 24-25.
29. श्रीवास्तव, एकांत; बढई, कुम्हार और कवि; किताबघर प्रकाशन, 4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण: 2003; पृ. 271.
30. रघुवंशी, नीलेश; कवि ने कहा ; किताबघर प्रकाशन,4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण: 2006; पृ. 92.
31. श्रीवास्तव, एकांत; बढई, कुम्हार और कवि; किताबघर प्रकाशन, 4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण: 2003; पृ. 267.
32. वही, पृ. 268.
33. जोशी, राजेश; प्रतिनिधि कविताएं; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण: 2018; पृ.142.